...वरना खिलाड़ी होता!

ख्वाजा अहमद अब्बास की पहली कहानी 'अबाबील' पर कृष्ण चंदर ने उनसे पूछा था- तुमने गांव का जीवन देखा है। अब्बास ने जवाब दिया- नहीं। कल्पना से लिखी है। बगैर अनुभव के गांव के जीवन पर कहानी कैसे लिख ली, जवाब था- ठीक वैसे ही, जैसे कातिल के बारे में लिखने से पहले कत्ल करना जरूरी नहीं होता...। अब्बास मूलत: कथाकार थे। उसके बाद पत्रकार और फिल्मकार। अमिताभ बच्चन को पहला ब्रेक अपनी फिल्म 'सात हिंदुस्तानी' में अब्बास साहब ने ही दिया था। ख्वाजा अहमद अब्बास से उनके दोस्त और कहानीकार कृष्ण चंदर की बातचीत के दुर्लभ अंश-

अपनी जन्मतिथि याद है? मेरा मतलब अपनी साहित्यिक जन्म तिथि से है?

+यूं तो मैं अपने जन्म से बहुत पहले पैदा हो गया था, लेकिन...

जन्म से पहले...कैसे?

+मेरा अभिप्राय साहित्य, शिक्षा और संस्कृति के उत्तराधिकार से है, जो मेरे पैदा होने से पहले मेरे यहां वर्तमान था। हाली की शायरी में मेरा जन्म हुआ, किताबों और पत्रिकाओं में पला-बढ़ा। तुम मुझे सही मायनों में किताबों का कीड़ा कह सकते हो। ननिहाल हाली का खानदान था। चचा ख्वाजा गुलाम-उस-सकलैन वकील, राजनीति और साहित्य के रसिया थे। हाली के बेटे ख्वाजा सज्जाद हुसैन, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के पहले मुस्लिम ग्रेजुएट, मेरे नाना थे। घर की औरतें 'तहजीबे निसवां' में बाकायदा लिखती थीं। इस साहित्यिक उत्तराधिकार को लेकर...

लेकिन सब कुछ उत्तराधिकार ही तो नहीं है?

+दरअसल, स्पोर्ट्समैन बनना चाहता था। मेरा छोटा कद और मेरा स्वास्थ्य (मुझे हमेशा नजले की शिकायत रही) मेरे मन में हीन भाव पैदा करने का कारण बने और मैंने सोचा कि खेल के मैदान में सफल नहीं हो सका, तो मुझे जीवन के किसी दूसरे क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी चाहिए। मैंने देखा कि जो लोग अच्छा बोल लेते हैं, अच्छी बहस कर लेते हैं, उनकी बड़ी आवभगत होती है। स्कूल के वाद-विवादों, कॉलेज और यूनिवर्सिटी के मुकाबलों में मैंने भाषण कला में बड़ी सफलता पाई और तुम जानते हो, अच्छा बोलने का अच्छा लिखने से कितना गहरा संबंध है। यही विचार मुझे साहित्य के मैदान में खींच लाया। कई बार सोचता हूं, यदि मैं खेलों के मैदान में सफल हो जाता, तो मर्चेंट या मुश्ताक की तरह एक सफल खिलाड़ी होता।

लेकिन मेरा पहला सवाल तो रह ही गया। साहित्य क्षेत्र में कब आए?

+उन्नीस सौ पैंतीस में। बंबई में एक कहानी लिखी थी- 'अबाबील' और वह जिसे कहते हैं- एक रात में मशहूर हो जाना- बस, यूं समझो कि मैं एक कहानी लिख कर मशहूर हो गया। उसका अनुवाद संसार की लगभग सभी सभ्य भाषाओं में हो चुका है- अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, स्वीडिश, चीनी आदि-आदि। जर्मन भाषा में संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का एक संकलन छपा है। उसमें वह कहानी शामिल की गई। इसी तरह डॉक्टर मुल्कराज आनंद और इकबाल सिंह ने जो संकलन किया है, उसमें भी वह कहानी शामिल है। वह एक जालिम किसान के जीवन से संबंध रखती है।

क्या साहित्य में राजनीति का दखल होना चाहिए?

+इसके बिना साहित्य असंभव है। हर चीज कहानी का विषय हो सकती है- चाहे वह आर्थिक हो या राजनीतिक, भौगोलिक हो या यौनिक। कहानी का विषय कुछ भी हो सकता है, लेकिन शर्त यह है कि पढ़ने में रोचक हो और इंसानियत से खाली न हो।

तुमने कभी प्रेम किया?

+हां।

शादी से पहले या शादी के बाद? डरो नहीं...तुम्हारी बीवी यहां मौजूद नहीं, इसलिए साफ-साफ बता सकते हो।

+बीवी से तो मैं डरता नहीं, न ही मेरी बीवी मुझसे डरती है। हम दोनों ही एक-दूसरे के बहुत गहरे दोस्त और साथी हैं। वह मेरे सारे भेद जानती है। मेरे उस प्रेम का भी पता है, जो शादी से बहुत पहले की बात है। असल में उस प्रेम की असफलता ने ही मुझसे 'अबाबील' के बाद दो और कहानियां लिखवाईं- 'फैसला' और 'एक लड़की' और ये दोनों कहानियां 'गमे-जानां' के दो विभिन्न पहलुओं का खाका खींचती हैं। 'फैसला' में मैं बहुत ज्यादा भावुक हो गया हूं, लेकिन 'एक लड़की' में उस प्रेम को हास्य द्वारा जीतने और उस पर काबू पाने की कोशिश करता हूं।

लेकिन प्रेम कहानियों पर तुम्हारा क्या खयाल है? क्या प्रेम कहानियों का, जिन्हें कुछ लोग भूल से रूमानी कहानियां कहते हैं। प्रगतिशील साहित्य में कोई स्थान है?

+प्रेम, जीवन और सामाजिक यथार्थ का एक आवश्यक अंग है। प्रायः प्रेम की कटुता सारे जीवन को कटु बना देती है। उस कटुता को उचित ढंग से दूर न किया जाए, तो कभी-कभी बड़े बुरे नतीजे निकलते हैं, इसलिए उपादेय साहित्य में हमेशा प्रेम कहानियों की जगह रहेगी, लेकिन मैं ऐसी रूमानी कहानियां पसंद नहीं करता, जिनमें रूमान के परदे में पलायन छिपा हो।

कभी-कभी प्रेम की कटुता जीवन भर मजा देती है।

+हां, अगर यह तीर तीर-नीम-कश हो।

और जिगर के पार न हो। इस कटुता की तीव्र भावना की धारा यदि दूसरी ओर मोड़ दी जाए और जीवन पर आक्रमण करने के बदले यह मृत्यु पर बाज बन कर झपटे...।

+तो ठीक है। नहीं तो यह रोग आदमी को 'फानी' बना देता है। मुझे इस वक्त इस पर हंगरी की एक कहानी याद आ रही है। एक आदमी को बड़ी प्यास लगी थी और यह प्यास किसी तरह न बुझती थी। किसी ने कहा- पानी पी लो, परंतु प्यास किसी तरह न बुझी, फिर किसी ने एक शरबत बताया, उसकी प्यास फिर भी न बुझी, फिर किसी ने कहा- शराब पियो, लेकिन प्यासे की प्यास शराब पीकर भी न बुझ सकी, फिर किसी ने कहा- खून पियो। प्यासे ने एक आदमी को कत्ल किया और उसका खून पिया। उसकी प्यास अब भी न बुझी। आखिर जब उसे फांसी पर चढ़ाया जा रहा था।

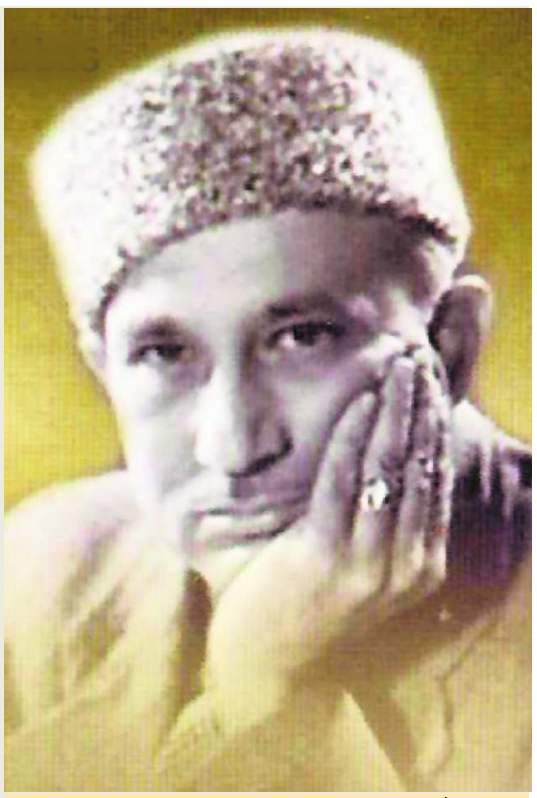

खुदा से मार्क्सवाद की ओर आना बड़ा अजीब लगता है, लेकिन इसके सिवा कोई चारा ही नहीं है, इसलिए आखिरी सवाल पूछता हूं- मार्क्सवाद के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है?

● मैं मार्क्सवाद को मूल रूप में ठीक मानता हूं, लेकिन मैं यह सही नहीं समझता कि मार्क्सवाद में कभी कोई बदलाव नहीं आ सकता। आज की परिस्थितियों में, अतीत के प्रकाश में, बुद्धि और मेधा और साइंस के प्रयोगों के आधार पर मार्क्सवाद जीवन का उचित दर्शन मालूम होता है, लेकिन यह अंतिम सच्चाई नहीं है।

अंतिम सच्चाई का रूप किसी ने नहीं देखा, क्योंकि सच्चाई भी एक सीढ़ी है, जो मानव-विकास के साथ ऊंची होती जाती है। हां, हम यह कह सकते हैं कि आज ज्ञान और विज्ञान के प्रकाश में मार्क्सवाद का दर्शन इंसान को बहुत आगे ले जा सकता है। उसके लिए एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकता है।

● कर सकता है, परंतु यह भी न भूलना चाहिए कि उस उज्ज्वल भविष्य की ओट में कितने ही उससे बेहतर भविष्य छिपे हुए हैं। मैं मार्क्सवाद पर विश्वास रखता हूं, लेकिन मैं यह भी समझता हूं कि यह 'मानव-इतिहास' का अगला कदम है, आखिरी कदम नहीं है।

(किताब 'मुझे कुछ कहना है...' से)

चांदी के तबले वाला संगीतकार...

❐ पंकज राग

भोला श्रेष्ठ नाम के गुणी संगीतकार...! भोला तबले के भी उस्ताद थे। तबला बजाने की कला से प्रभावित होकर गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें इनाम में चांदी का तबला भेंट किया था। भोला श्रेष्ठ का संगीत जीवन कलकत्ता में केसी डे और मन्ना डे के साथ बीता। उन्हीं के साथ पांचवें दशक में वह बंबई आए। बंबई में 'महल' फिल्म तक वह खेमचंद प्रकाश के सहायक के रूप में काम करते रहे। 'दारोगाजी' (1949) में वह संगीतकार बुलो सी. रानी के सहायक थे। 'मुकद्दर' (1950) में उन्होंने खेमचंद प्रकाश के साथ मिल कर कुछ गीत कंपोज किए, जिनमें पश्चिमी ऑर्केस्ट्रा की छाप लिए 'जब नैनों में कोई आन बसे', राजा मेहंदी अली खां लिखित 'देख गगन में काली घटा क्या कहती है' और 'आहें भर-भर के तुझे याद किया करती हूं' (दोनों नलिनी जयवंत) भी शामिल थे।

गीता बाली, सज्जन और बेगम पारा की 'नजरिया' (1952) में भोला श्रेष्ठ के संगीत निर्देशन में कोरस के सुंदर प्रयोग के साथ लोक शैली का 'ये काली घटा, काली घटा है बादे सबा' (किशोर, महिला स्वर और साथी), तबले की सुंदर संगत के साथ 'लो जी हमें भी हिचकी आई' (लता), दर्दीले सुर लिए 'हंसते-हंसते रोना पड़ा' (लता), किशोर कुमार के मस्ती भरे स्वर में 'कारें हैं बेकार सभी' और 'अजी माना कि आपका जवाब' और लता के मीठे स्वर और लोच भरी शैली में गवाए मेलोडी प्रधान 'धूप छैयां में सैयां से नैना' जैसे गीतों में भोला श्रेष्ठ ने अपनी प्रतिभा का सिक्का जमा दिया था। खेमचंद प्रकाश के सहायक के रूप में किशोर कुमार की प्रतिभा से वह वाकिफ हो चुके थे। भोला श्रेष्ठ के लिए किशोर इतने खास थे कि न केवल 'जिस दिन से मोहब्बत' जैसे गैर फिल्मी गीत के लिए उन्होंने किशोर का स्वर लिया, बल्कि उस दौर में किशोर को

याद किया, जब संगीतकार सचिन देव बर्मन को छोड़ कर किसी और के बारे में लोग कम ही सोचते थे। उन्होंने 'नजरिया' में अकेले किशोर को चुना। किशोर कुमार व्यक्तिगत तौर पर भी उनके अच्छे दोस्त बन चुके थे। इस सिलसिले को जारी रखते हुए फिल्म 'नौलखा हार' (1953) में भी किशोर कुमार की आवाज को उन्होंने शीर्षक गीत 'मोहे ला दे नौलखा हार' में अच्छी तरह इस्तेमाल किया। यह गीत उन दिनों लोकप्रिय रहा। वैसे, इस फिल्म का सबसे खूबसूरत गीत है आशा भोंसले के स्वर में रिद्म मिठास के सुंदर संगम से युक्त 'लगता मधुर-मधुर मुझे बंधन' था। क्लोरोनेट और बांसुरी के सुंदर प्रयोग वाला यह गीत आज पूरी तरह भुला दिया गया है। इस गीत की गिनती आशा भोंसले के आरंभिक दौर के सर्वश्रेष्ठ गीतों में की जा सकती है। इसी फिल्म का मधुबाला झावेरी का गाया मधुर गीत 'सुन-सुन ओ प्यारे हंसा' भी हिट रहा था।

भोला श्रेष्ठ ने कम फिल्मों में संगीत दिया। कम अवसर के बावजूद उन्होंने मीठे और कर्णप्रिय गीत दिए। गुलाम हैदर के पाकिस्तान जाने के बाद उनकी अधूरी छोड़ी फिल्म 'आबशार' (1953) के संगीत को पूरा करने का जिम्मा मोहम्मद अशर्फी और भोला श्रेष्ठ को दिया गया और इस फिल्म में भी लता के गाए 'चले आओ तुम्हें आंसू हमार याद करते हैं' और 'मुझको है तुमसे प्यार क्यूं यह न बता सकूंगी मैं' में मिठास बखूबी झलकती है। 'मुझको है तुमसे प्यार क्यूं'(पुरुष आवाज में) जगमोहन की गाई प्रसिद्ध रचना 'दिल को है तुझसे प्यार क्यूं' के शब्दों की याद दिलाता है। मेलोडी और रिद्म का सुंदर समन्वय भोला श्रेष्ठ की संगीतबद्ध 'लाखों में एक' (1955) फिल्म के 'मंजिल की तरफ अपनी बढ़ते ही जाएंगे' (तलत) में भी मिलता है।

'इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के' से मिलती-जुलती इस धुन को सजाने में पृष्ठभूमि में पियानो और गीत के साथ-साथ बांसुरी के बेहद मनोहारी टुकड़ों का प्रयोग भोला श्रेष्ठ ने किया था, पर भोला श्रेष्ठ की सर्वश्रेष्ठ मेलोडी और कंपोजिशन वाली फिल्म थी, छठे दशक की 'यह बस्ती, यह लोग', जो प्रदर्शित नहीं हो सकी। इस फिल्म में लता के गाए 'दिल जलेगा, तो जमाने में उजाला होगा' की तर्ज और गायकी बहुत चर्चित हुई थी और यह आज भी दिल को छू लेती है। प्रेम वाखर्टनी लिखित यह खूबसूरत गजल अपने शब्दों से जितना मोहित करती है, उतनी ही तबले के ठेकों के प्रशंसनीय प्रयोग से। मधुबाला और बलराज साहनी अभिनीत इस फिल्म में भोला श्रेष्ठ ने आशा भोंसले से 'इधर तो देखो' जैसा क्लब सांग और आशा व तलत से 'यह तारों की महफिल' जैसे कर्णप्रिय गाने भी गवाए थे। भोला श्रेष्ठ द्वारा संगीतबद्ध कई फिल्में रिलीज नहीं हो पाईं और उनकी आखिरी रिलीज फिल्में 'कीमत' और 'तनखा' (1956) भी फ्लॉप रहीं। हालांकि, 'तनखा' में 'सो जा दिले नाशाद सो जा' और 'टकराई है, जिस दिन से नजर तेरी नजर से' आशा की सुंदर गायकी का उदाहरण थे।

छोटा पर्दा

अशोक और माधुरी शामिल!

सोनी-सब के शो 'टीवी, बीवी और मैं' में मशहूर कलाकार अशोक लोखंडे और माधुरी संजीव जल्द ही नजर आएंगे। शो की कहानी एक टेलीविजन निर्माता राजीव (करण वीर मेहरा) की जिंदगी पर है। शो में राजीव के बाऊजी और अम्मा की भूमिका निभाएंगे। बाऊजी (अशोक लोखंडे) मजाकिया किरदार है। वह बेहतरीन पति, अच्छे पिता, प्रिया (श्रुति सेठ) के लिए आदर्श ससुर और अपने पोते के लिए दुलार करने वाला दादा है। उसके किरदार की खूबी यह है कि उसे गॉसिप करना पसंद है और वह लोगों के बीच झगड़ा करवाने का कोई मौका नहीं गंवाता, वहीं दूसरी ओर अम्मा (माधुरी संजीव) डेली सोप की शौकीन हैं। वह डेली सोप में जो भी देखती है, वैसा ही बनने और करने की कोशिश करती है। वह हमेशा अपनी बहू प्रिया को बिंदिया जैसा बनने के लिए ताना मारती रहती हैं।

कोंकणा सेन शर्मा और रत्ना पाठक शाह अलग-अलग मिजाज की कलाकार हैं। कोंकणा गंभीर हैं तो रत्ना ने कॉमेडी किरदार भी किए। दोनों पहली बार परदे पर साथ आ रही हैं, 'लिपस्टिक अंडर माय बुर्का' में।

'लिपस्टिक वाले सपने'...

❐ चेन्नै से गौतमन भास्करन

कहानी चार औरतों की है। दो हिंदू हैं, दो मुसलमान। सभी भोपाल की हैं। जिंदगी से नाखुश और खुद को अधूरी मानती हैं, लेकिन सपने बड़े हैं, सोच भी उसी कद की। रेहाना दर्जी परिवार से है, कॉलेज में पढ़ती है और अलग ही दिखना भी चाहती है। सुंदर दिखने के लिए जरूरी सामान खरीद नहीं पाती, तो दुकानों से चोरी कर लेती है।

'लिपस्टिक अंडर माय बुर्का' या 'लिपस्टिक वाले सपने' कहें... सेंसर बोर्ड से लंबी लड़ाई के बाद फिल्म आखिरकार 28 जुलाई को परदे पर आ रही है। अलंकृता श्रीवास्तव की फिल्म परदे पर धूम मचा सकती है कि कहानी ही ऐसी है। सेंसर बोर्ड ने फिल्म को मंजूरी देने से इंकार कर दिया, लेकिन अलंकृता ने लड़ाई लड़ी और जीत गई। फिल्म को वयस्क ही देख सकेंगे। कुछ सीन भी काटे गए हैं। रेहाना, दुकान से लिपस्टिक चुरा कर कपड़ों में छिपा लेती है। कभी वह जूतों में भी सामान छिपा लेती है। कॉलेज में उसका बॉयफ्रेंड भी है। उसका परिवार पुरानी सोच का है। पिता को बेटी का सज-धज कर निकलना पसंद नहीं है। कहानी में अलंकृता ने जिन पुरुष किरदारों को लिया है, वे सभी भले नहीं हैं। लीला (आहना कुमार) का प्रेमी फोटोग्राफर है। उसकी सगाई बड़े घर की लड़की से होती है। लीला की शादी ऐसे व्यक्ति से होती है, जो उसे प्यार नहीं करता। कहानी में दो पुरुष और हैं, जो महिलाओं से कन्नी काटते रहते हैं। शिरीन (कोंकणा सेन शर्मा) के तीन बच्चे हैं। वे अभी-अभी सऊदी अरब से लौट कर आए हैं। शिरीन का पति अपनी पत्नी से उदासीन बर्ताव करता है। कई बार गर्भ भी गिरवा चुका है। उनकी नौकरानी से पति का लगाव दिखाया गया है।

साफ है कि कहानी में पुरुषों का महिलाओं से बर्ताव दिखाया गया है और वे महिलाओं की आजादी को कायम नहीं रखने देना चाहते। चौथी महिला का किरदार उषा (रत्ना पाठक शाह) के जिम्मे आया है। उषा मोहल्ले भर की चहेती है। पति है नहीं और तमाम लोग 'बुआजी' कहते हैं। उनका ज्यादातर वक्त पढ़ने में जाता है। 55 साल की बुआ की मुलाकात तैराकी कोच से होती है और वे मोबाइल फोन पर बतियाने लगते हैं। उन्हें लगता है कि वे उस किसी उपन्यास का किरदार हैं, जो उन्होंने पढ़ा है। उषा अब रोजी में बदल जाती है और कल्पना करती है कि स्वीमिंग पूल में कोच के साथ रोमांस करे, लेकिन एक दिन हकीकत सामने आ जाती है। उनके पड़ोसी ही उन्हें घर से बेदखल कर सड़कों पर छोड़ देते हैं। तैराकी कोच भी उनसे दूर हो जाता है।

फिल्म फेस्टिवल, टोक्यो में फिल्म का प्रिव्यू पिछले साल हो चुका है। फिल्म कई बातों से धूल साफ करती है। भारत में महिलाओं की हालत बेहतर बताई जाती है, लेकिन इसे देख कर लगता है कि आज भी पुरानी बेड़ियां हम नहीं तोड़ पाए। पुरुषों का अहंकार महिलाओं को आज भी कुचल रहा है। टोक्यो में ही अलंकृता ने बताया था कि 'लिपस्टिक...' की कहानी से अपनी भावनाएं बताई हैं। एक औरत के रूप में मुझे लगा कि मैं वो सब कुछ नहीं कह सकती, जो कहना चाहती हूं। यह भी नहीं जानती कि मुझे क्या करना चाहिए, लेकिन फिल्म देख कर लोग तय कर देंगे कि मैंने क्या कहा है।

यह बहुत अपनी-सी फिल्म है। मैंने इस कहानी को लिख कर खुद को बेवकूफ बनाया है। यह मेरी अपनी लड़ाई के बारे में है और जानती हूं कि मेरे जैसी और भी कई महिलाएं होंगी, जो मानती हैं कि उनके पास दुनिया की तमाम आजादी है, लेकिन ऐसा नहीं है। अलंकृता का परिवार नए खयालों का है, लेकिन फिर भी उन्हें यह कहानी कहने में झिझक हुई थी।